किया गया है। श्रीगुरु द्वारा उपदिष्ट पारमार्थिक कर्तव्य श्रीकृष्ण की भक्ति के लिए प्रयोजित हैं, परन्तु दूसरे के धर्म (कर्तव्य) का अनुकरण करने की अपेक्षा आजन्म लौकिक-पारलौकिक स्वधर्म में दृढ़ रहना भी उत्तम है। लौकिक और पारमार्थिक धर्म में भेद हो सकता है, पर प्रामाणिक आज्ञा का पालन करना दोनों रूपों में कल्याणकारी है। जो प्रकृति के गुणों से युक्त है, उसे दूसरों का अनुकरण न करके यथायोग्य स्वधर्म आचरण करना चाहिए। उदाहरण के लिए, सत्त्वगुणी ब्राह्मण अहिंसक होता है, जबकि रजोगुणी क्षत्रिय के लिए हिंसा की छूट है। इस न्याय से एक क्षत्रिय के लिए ब्राह्मणोचित अहिंसा का अनुकरण करने की अपेक्षा हिंसा करते हुए परास्त होना अधिक उत्तम होगा। प्रत्येक मनुष्य को क्रमिक प्रणाली के द्वारा हृदय का शुद्धिकरण करना है, अकस्मात् नहीं। परन्तु प्राकृतिक गुणों को लंघन करके पूर्णरूप से कृष्णभावनाभावित हो जाने पर तो वह प्रामाणिक गुरु की आज्ञानुसार कुछ भी कर्म कर सकता है। कृष्णभावना की उस पूर्णावस्था में क्षत्रिय ब्राह्मण के समान तथा ब्राह्मण क्षत्रिय के समान कर्म कर सकता है। उस शुद्ध सत्त्वमयी अवस्था में प्राकृत-जगत् के भेदभाव नहीं रहते। उदाहरणस्वरूप, विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय थे, किन्तु परवर्ती काल में उन्होंने ब्राह्मणोचित व्यवहार किया और ब्राह्मण होने पर भी परशुराम ने क्षत्रिय के कर्म किये। शुद्धसत्त्व में स्थित होने के कारण वे ऐसा कर सकते थे। परन्तु जब तक त्रिगुणों में स्थिति है, तब तक गुणों के अनुसार स्वधर्म का पालन करना चाहिए। साथ ही, पूर्ण रूप से कृष्णभावनाभावित हो जाय।

अर्जुन उवाच।
अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।३६।।

अर्जुनः उवाच=अर्जुन ने कहा; **अथ**=ऐसे में; **केन**=किसके द्वारा; **प्रयुक्तः**=प्रेरित हुआ; **अयम्**=यह; **पापम्**=पाप कर्म; **चरति**=करता है; **पूरुषः**=मनुष्य; **अनिच्छन्**=इच्छा न होने पर; **अपि**=भी; **वार्ष्णेय**=हे वृष्णिवंशी श्रीकृष्ण; **बलात् इव**=बलपूर्वक की भाँति; **नियोजितः**=लगाया हुआ।

अनुवाद

अर्जुन ने कहा, हे वार्ष्णेय (श्रीकृष्ण)! फिर किसके द्वारा प्रेरित हुआ यह मनुष्य इच्छा न होने पर भी बलात् पापकर्म में प्रवृत्त हो जाता है?।।३६।।

तात्पर्य

जीवात्मा श्रीभगवान् का भिन्न-अंश है, इसलिए अपने आद्य स्वरूप में दिव्य, शुद्ध एवं समस्त प्राकृतिक विकारों से मुक्त है। अतएव स्वभावतः वह प्राकृत-जगत् के पापकर्मों में प्रवृत्त नहीं हो सकता। किन्तु माया के संसर्ग में आने पर निस्सङ्कोच नाना प्रकार से, बहुधा मन के विरुद्ध भी, अनेक पापकर्म कर बैठता है। अतः संसार में जीवों का स्वभाव विकृत क्यों हो जाता है, इस सम्बन्ध में श्रीकृष्ण से अर्जुन की